अध्याय

5

पर्यावरण एवं नैतिकता

पिछले अध्याय में हमने समाज में मनुष्य के अधिकार एवं कर्तव्यों के स्वरूप का अध्ययन किया। अधिकार एवं कर्तव्य की धारणा मनुष्य–मनुष्य के सम्बन्धों तक ही सीमित नहीं है। हमारे सामाजिक जीवन एवं उसकी प्रगति का महत्वपूर्ण आधार पर्यावरण है जो मनुष्य के अस्तित्व को कायम रखने का अपरिहार्य आधार है। पर्यावरण मनुष्य के चारों ओर विद्यमान प्राकृतिक परिवेश के रूप में जाना जाताहै जो उसे रहने के लिए जमीन, खाने के लिए भोजन, तन ढकने के लिए वस्त्र, पीने के लिए पानी, सांस लेने के लिए ऑक्सीजन जैसी मूल आवश्यकताओं के अतिरिक्त विकास व उन्नति के अवसर देता है। प्रकृति की बाधाओं ने मुनष्य को विकास के लिए अवसर दिया और विकसित मनुष्य ने प्रकृति की ही घोर उपेक्षा की। परिणामस्वरूप आज प्रकृति एवं उसके पर्यावरणीय घटकों में असंतुलन एवं अवनयन (Degradation) उत्पन्न हुआ है।

उपर्युक्त विकृति का कारण मनुष्य के दोषपूर्ण आचरण को माना जाता है अतः आज पर्यावरण की संरक्षा एवं स्वास्थ्य के लिए न्यायसंगत एवं विवेकपूर्ण परामर्श की अति आवश्यकता है। पर्यावरण नैतिकता नीतिशास्त्र का ऐसा ही प्रयोगात्मक (Prachical) क्षेत्र है जिसमें पर्यावरण एवं उसके विभिन्न घटकों के मध्य पाये जाने वाले अन्तः सम्बन्धों के आदर्श स्वरूप को बनाये रखने हेतु विवेकसंगत व निष्पक्ष आचरण के मापदण्ड पर विचार किया जाता है।

5.01 पर्यावरण की परिभाषा एवं स्वरूप

पर्यावरण शब्द संस्कृत भाषा के 'परि' उपसर्ग जिसका अर्थ 'चारों ओर' तथा आवरण से मिलकर बना है। इस प्रकार पर्यावरण को ऐसे सभी कारको (Factors) का योग कहा जाता है जो पृथ्वी के जैव जगत (जिसमें मनुष्य सहित सभी जीव शामिल है) को चारो ओर से घेरे हुए है।

पर्यावरण को अंग्रेजी में 'Environment' कहा जाता है जो फ्रेंच शब्द 'Environer' से लिया गया है। इसका भी अर्थ है घेरना अर्थात् चारों ओर से आवृत्त करना।

पर्यावरण को पहले प्रमुख रूप से मनुष्य के प्राकृतिक परिवेश के रूप में जाना जाता था परन्तु पारिस्थितिकीय विज्ञान ने पर्यावरण के अन्तर्गत विभिन्न अन्तः समबन्धों एवं अन्तःक्रियाओं का अध्ययन करते हुए प्रकट किया कि पर्यावरण में विभिन्न घटकों के मध्य अन्तर्निभरता होती है।

इस प्रकार पर्यावरण अपनी सम्पूर्णता में एक इकाई है जिसमें अजैविक व जैविक घटक आपस में अन्तर्क्रिया करते हुए परस्पर निर्भर होते है और यह विशेषता पर्यावरण को एक पारितन्त्र (Ecosystem) का रूप प्रदान करती है।

पर्यावरण प्रकृति का ही रूप है जो सभी जीवों के जीवन चक्र (Life Cycle) को बनाए रखने में सहायक है और इसे निर्धारित भी करता है। सभी जीव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति पर्यावरण से करते हैं। इसलिए पर्यावरण को उन प्रभावों का योग कहते है जो जीवन का निर्धारण करते है। यह प्राकृतिक पर्यावरण है, परन्तु मनुष्य सिर्फ प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण में नहीं रहता उसका सांस्कृतिक पक्ष भी है जो उसके मूल्यों से निर्मित होता है। मनुष्य का यह सांस्कृतिक पक्ष प्राकृतिक पर्यावरण पर भी प्रभाव डालता है। इस प्रकार पर्यावरण में अजैविक एवं जैविक घटकों के साथ–साथ प्रकृति प्रदत्त तत्वों से भिन्न सांस्कृतिक अनुक्रियाओं का प्रभाव भी सम्मिलित होता है। इस आधार पर पर्यावरण की परिभाषा हैः–

पर्यावरण एक अविभाज्य समष्टि है तथा भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तत्वों वाले पारस्परिक क्रियाशील तन्त्रो से इसकी रचना होती है। ये तन्त्र अलग–अलग या सामूहिक रूप से विभिन्न रूपों में परस्पर सम्बन्धित होते है।

–सविन्द्र सिंह (पर्यावरण भूगोल)

5.1.1 पर्यावरण का स्वरूप

पर्यावरण की परिभाषा से स्पष्ट है कि पर्यावरण भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तत्वों का योग है जो परिवर्तित होता रहता है। पर्यावरण के सभी तत्व परस्पर एक दूसरे पर निर्भर करते है। पर्यावरण के उक्त तत्वों को अजैविक व जैविक घटकों में बांटा जाता है।

अजैविक घटक– इसे भौतिक या अजैविक पर्यावरण (Physical environment) कहा जाता है जिसमें निर्जीव पदार्थ आते है जो सभी जीवों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति एवं वृद्धि का आधार होते है। भौतिक पर्यावरण तीन प्रकार का होता है:–

1. स्थलमण्डल (Lithosphere)– इसमें पर्वत, पठार, मैदान चट्टाने इत्यादि भू–आकृतियाँ सम्मिलित है।
2. वायुमण्डल (Atmosphere)– इसमें विभिन्न गैसे, तापीय दशा, आद्रता, बादल वर्षा पवन इत्यादि आते है।
3. जल मण्डल (Hydrosphere)– इसमें विभिन्न जल राशियाँ महासागर व सागर इत्यादि आते हैं।

जैविक घटक– इसे जैविक पर्यावरण (Biotic Environemnt) कहते है। इसमें वनस्पति तथा मनुष्य सहित सभी जीव जन्तु शामिल हैं। जैविक पर्यावरण को दो भागों में बांटा जाता है।

(1) वनस्पति जगत (Flora)
(2) जन्तु जगत (Founa)

इन सजीवों में मनुष्य सर्वोच्च विकसित जीव माना जाता है। चेतना के विकास की दृष्टि से वनस्पति जगत में स्पन्दन एवं संवेदनशीलता का आरम्भ माना जाता है जबकि पशु पक्षियों में संवेदनशीलता का क्रमोन्नत स्तर देखा जाता है। मनुष्य में संवेदनशीलता एवं विचार का उच्चतम पक्ष पाया जाता है। सभी जीवधारी अपने जीवन निर्वाह, अस्तित्व तथा विकास के लिए भौतिक पर्यावरण से पदार्थ प्राप्त करते है। ये जीव आपस में भी सम्बंधित होते है तथा भौतिक पर्यावरण से भी सम्बधित होते है।

भौतिक पर्यावरण से जीवों का सम्बंध तथा जीवों का आपस में सम्बंध जिस विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है उसे पारिस्थितिकी (Ecology) कहा जाता है। इन सम्बंधों का एक आदर्श अथवा नियामक रूप है जिसके बने रहने पर ही पर्यावरण को जीवन के अस्तित्व एवं विकास के अनुकूल कहा जा सकता है।

अजैविक एवं जैविक घटक तथा उनके अन्तःसंबंध प्राकृतिक नियमों के अनुसार है। मनुष्य जैविक घटक का ऐसा पक्ष है जिसमें विचार एवं इच्छाओं का उन्नत स्तर है। उसे सर्वाधिक बुद्धिमान कहा गया है जिसने समाज संगठन को व्यवस्थित रूप में विकसित किया है और प्राकृतिक सम्पदा के आधार पर ही आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक व धार्मिक विकास किया है जिससे उसका सांस्कृतिक पर्यावरण निर्मित हुआ है।

सांस्कृतिक पर्यावरण में मनुष्य की विविध गतिविधियाँ जैसे–मानव बस्तियों (वर्तमान में नगरीकरण) का निर्माण, परिवहन के साधन, वस्त्र, भोजन, उद्योग धन्धे, धर्म, शिक्षा, ज्ञान–विज्ञान व तकनीक आते है। यह मानव निर्मित पर्यावरण है परन्तु इसका निर्माण प्राकृतिक पर्यावरण के बिना सम्भव नहीं है।

सांस्कृतिक पर्यावरण और प्राकृतिक पर्यावरण के सम्बन्ध को प्रकृति एवं मनुष्य के सम्बन्ध का अध्ययन कर हम बेहतर समझ सकते हैं।

5.02 मनुष्य एवं प्रकृति का सम्बन्ध–

प्रकृति (Nature) का शब्द कोशीय अर्थ होता है बाहरी दुनिया (External world) इस प्रकार मनुष्य से बाहर प्रकृति होनी चाहिए। परन्तु आज मनुष्य प्राकृतिक दृश्यों को देखने के लिए, उसके आनन्द को महसूस करने के लिए अपने आवास से दूर जाता है क्योंकि वह जिस सुविधा भोगी संसार से जुडा है वह मानव निर्मित व कृत्रिम है। आरम्भिक मनुष्य प्राकृतिक जगत में ही निवास करता था। प्रकृति में उसकी भोजन व अन्य आवश्यकताएं पूरी होती थी। उसका जीवन संघर्षमय था परन्तु मनुष्य ने अपनी बुद्धि से इन प्राकृतिक संघर्षों में जीना सीखा और कौशल का विकास किया। प्रकृति में मनुष्य के लिए हिंसक व अहिंसक दोनों प्रकार की शक्तियाँ थी। जिनसे मुकाबला करते हुए प्राकृतिक मानव ने समूह में रहना आरम्भ किया और वह सामाजिक मानव बना जिसने कानून, नियम व नीतियों की व्यवस्था की। इस सामाजिक मानव ने समूह में रहकर हिंसक पशुओं से अपना बचाव करना व सुरक्षा करना सीखा और साथ ही साथ प्राकृतिक परिवेश से अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आर्थिक गतिविधियाँ आरम्भ की।

प्रारम्भ में इन आर्थिक गतिविधियों का क्षेत्र प्राकृतिक सुविधाओं के आधार पर ही हुआ। इसका प्रमाण नदी घाटी सभ्यताएँ हैं। नदियों के किनारे सभ्यता का विकास यह प्रकट करता है कि रहने के लिए समतल भूमि, कृषि के लिए उर्वरभूमि एवं पर्याप्त जल की मौजूदगी ने मुनष्य की सभ्यता को उन्नत किया। इस समय मनुष्य की आर्थिक गतिविधियाँ प्रकृति के साथ सामन्जस्यपूर्ण थी। प्रकृति के प्रति उनके मन में आदर व कृतज्ञता थी जो स्वाभाविक नैतिक प्रतिक्रिया कही जा सकती है। इस काल में जो धार्मिक प्रवृत्तियाँ आरम्भ हुई उसमें प्रकृति की उपासना थी। हमारी वैदिक संस्कृति में भी हम पाते है कि प्रकृति को श्रद्धा भाव से देखा गया है और भरण–पोषण का आधार होने के कारण उसे आदरपूर्ण मानवीय सम्बन्धों में स्वीकारा गया है

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु।।' (अर्थवेद 12.1.12)

अर्थात भूमि माता है और मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ। पर्जन्य (मेघ) हमारे पिता है जो हमारी प्यास बुझाते है।

जैसे–जैसे मनुष्य के विकास की कहानी आगे बढ़ी उसकी आर्थिक गतिविधियाँ तेज हुई। उसने अपनी बुद्धि और कौशल से अपनी प्रजाति को सुरक्षित किया और जनसंख्या का दबाव भी प्रकृति पर बढ़ने लगा। वह सामाजिक मानव से आर्थिक मानव की प्रमुख भूमिका में आ गया और प्राकृतिक संसाधनों का तेज गति से उपभोग आरम्भ हुआ।

विकास की इस यात्रा को प्राकृतिक चिन्तन पर आधारित धर्मों से भिन्न जब ऐसे धर्मों का सहयोग प्राप्त हुआ जिन्होंने मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानते हुए प्रकृति को भोग्य माना तब आर्थिक मानव को सामाजिक व सांस्कृतिक सहयोग भी प्राप्त हुआ। जिसके फलस्वरूप पर्यावरणीय मूल्यों से स्वतंत्र विज्ञान, तकनीक और उपभोक्तावाद का उदय हुआ। जो प्रौद्योगिकी मानवीय वृद्धि एवं कौशल के प्रति हमें अभिभूत करती है उसके दुष्परिणाम हमारे सामने आने लगे। जिस विज्ञान और तकनीक का प्रयोग मानवतावादी मूल्यों के लिए किया जाना था उसके दिशाहीन उत्पादन ने पारिस्थितिकीय संतुलन को खतरे में डाल दिया।

वर्तमान में पर्यावरणीय समस्याएँ विज्ञान एवं भूगोल की समस्याएं नहीं रह गई है यह हमारी सामाजिक व सांस्कृतिक पक्ष की भी समस्या बन गई है जिसके निम्न प्रमुख दुष्परिणाम हैः–

(1) पर्यावरण प्रदूषण आज चिन्ता का विषय है जो आधुनिक जीवन शैली के अपशिष्टो का परिणाम है। प्राकृतिक पर्यावरण के प्रमुख घटक मिट्टी, जल एवं वायु इन तीनों की गुणवत्ता घटती जा रही है और प्रदूषक तत्वों से ऐसी अवांछनीय स्थिति प्रकट हो रही है जो जैव मण्डल के लिए खतरा बन गई है। मृदा प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण व घ्वनि प्रदूषण पर्यावरणीय प्रदूषण के प्रमुख प्रकार है।

(2) मनुष्य की आर्थिक गतिविधियों के बेलगाम होने से संसाधनों का बड़ी मात्रा में विदोहन हो रहा है और पुनः इन्हें उत्पादित करने में प्रकृति की प्रक्रिया धीमी है जो भविष्य के विकास के लिए प्रश्नसूचक है।

(3) वनो के क्षेत्रफल में कमी आई है जिसका प्रभाव पृथ्वी पर तापमान वृद्धि (Global warming) है जिसके कारण जलवायु परिवर्तन एवं प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि हुई है।

(4) शोध और तकनीकी प्रयोगों में अन्य जीवों का प्रयोग खाद्य श्रृंखला को समाप्त कर रहा है, जैसे मेंढक व सांपो की संख्या कम होने से चूहो की संख्या बढ़ रही है जो प्रकृति के लिए विनाशकारी है।

(5) कीटनाशको के अत्यधिक प्रयोग से भूमि प्रदूषण हो रहा है। फसलों में स्वास्थ्य के प्रतिकूल तत्त्व पाये जाने लगे है। यहाँ तक की कीटनाशको युक्त खाद्य पदार्थ खाने से जानवरों की मौत होती है। उन मृत जानवरो को खाने वाले पक्षी बाज, गिद्ध की प्रजाति भी खतरे में आ गई है।

(6) जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि से प्रकृति पर उसकी क्षमता से अधिक भार पड़ रहा है और अनियोजित नगरीय विकास, मलिन बस्तियों के निर्माण से सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रदूषण पैदा हो रहा है।

उपर्युक्त सभी पर्यावरणीय समस्याओं का कारण मनुष्य की प्रकृति के प्रति अनुचित दृष्टि एवं व्यवहार है जो प्रकृति के मूल्य को उचित ढंग से न देखने का परिणाम है।

मनुष्य की विकास यात्रा प्रकृति के साथ उसके बदलते सम्बन्धों की कहानी है जिसके मूल में पाश्चात्य जगत में तीन विचारधाराओं को स्वीकारा गया है:–

(1) नियतत्त्ववाद (Determinism):– इस विचारधारा को फ्रेडरिक रेटजेल एवं उनकी शिष्या ई. सी. सेम्पुल ने प्रस्तुत किया था। इस विचारधारा के अनुसार प्रकृति या पर्यावरण ही सर्वशक्तिमान है और मनुष्य के क्रियाकलापों का नियंत्रण मनुष्य के हाथ में है। इस सिद्धान्त ने मनुष्य को प्रकृति का दास कहा।

(2) संभववाद (Possibilism):– इसका सर्वप्रथम प्रयोग एल. फैवर ने किया जिसके अनुसार नियतत्त्ववाद सत्य नहीं है। प्रकृति में मनुष्य के लिए अपार संभावनाएँ हैं। वह इन संभावनाओं का स्वामी है। अतः इन संभावनाओं का उपयोग कैसे करना है इसका निर्णय मनुष्य को ही करना है।

(3) नवनियतत्त्ववाद (Neo Determinism):– इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 1938 में ग्रिफिथ टेलर ने किया। यह सिद्धान्त न तो मनुष्य को प्रकृति का दास मानता है ना ही संभावनाओं का पूर्ण स्वामी स्वीकारता है। उनके अनुसार मनुष्य वातावरण का उपयोग करने की स्वतंत्रता रखता है, परन्तु उसे प्राकृतिक नियमों को मानते हुए आगे बढ़ना होता है। इसे रूको एवं जाओं की धारणा कहा जाता है जो अंधाधुंध प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग को अनुचित स्वीकार करती है।

उपर्युक्त विचारधाराओं में प्रथम विचारधारा मनुष्य के कौशल और सूझबूझ की उपेक्षा करती है तो दूसरी विचारधारा उसकी स्वतंत्रता को स्वच्छंदता की ओर अग्रसर करती है। तीसरी विचारधारा संतुलित प्रतीत होती है, परन्तु वर्तमान में पर्यावरण संकट इतना विस्तार ले चुका है कि पर्यावरणविद् मानव केन्द्रित मूल्य को अप्रासंगिक (Irrelavant) मानने लगे है।

मानव केन्द्रित मूल्य (Anthropocentric Values):- इन मूल्यों को मनुष्य की इच्छा एवं सन्तुष्टि को केन्द्र में रखते हुए वांछनीय कहा जाता है। मनुष्य को प्रकृति का सर्वोत्तम जीव मानकर अन्य प्राणियों, वनस्पतियों एवं भौतिक तत्वों को मनुष्य की दृष्टि से उपभोग के साधन होने के कारण मूल्यवान माना जाता है।

तीव्र औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं अन्य पर्यावरणीय समस्याओं के मूल में मानव केन्द्रित मूल्यों की अवधारणा ही स्वीकारी जाती है। वर्तमान में पर्यावरणविद् प्रकृति व अन्य जीवों के अन्तस्थ मूल्य (Intrinsic value) को महत्वपूर्ण मानते हैं।

अंतस्थ मूल्य (Intrinsic value):- ये मूल्य किसी उद्देश्य की पूर्ति या मानव के लिए उपयोगी होने पर निर्भर नहीं करते इनका अस्तित्व में होना ही मूल्यवान है। इसी अवधारणा के कारण पशुजगत, वनस्पति जगत व भौतिक तत्त्वों के अन्तस्थ मूल्यों को पारिस्थितिकीय नैतिकता की दृष्टि से स्वीकारा जाता है। इनके अस्तित्व के नष्ट होने पर जीवों की श्रंखलाएँ एवं अन्तः सम्बन्ध प्रभावित होंगे जिन्हें बनाये रखना प्रकृति एवं मनुष्य दोनों के अस्तित्व परक दृष्टिकोण से वांछनीय है। यह जिम्मेदारी व्यक्ति की ही है, क्योंकि समूचे पर्यावरण में वही संकल्प की स्वतन्त्रता से युक्त नैतिककर्त्ता है जो अपने कार्यों के

विकल्पों के मध्य उचित चुनाव करने की समर्थता रखता है और कर्म का चुनाव सोच विचार कर नैतिक उत्तरदायित्व की भावना के साथ कर सकता है।

5.03 व्यक्ति का पर्यावरण के प्रति दायित्व

मनुष्य के कर्तव्यों की धारणा सिर्फ अन्य मनुष्यों के प्रति व्यवहार तक सीमित नहीं है उसका क्षेत्र पर्यावरण के जैविक एवं अजैविक घटको तक भी फैला हुआ है। मनुष्य सभी जीवधारियों में संवेदनशीलता एवं विवेक की दृष्टि से अत्यधिक विकसित है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति पर्यावरण से करता है इसलिए पर्यावरण का संरक्षण उसका दायित्व है। साथ ही साथ अन्य जीव जो पर्यावरण से अपनी आवश्यकताएँ पूरी करते है उनकी भी जिम्मेदारी मनुष्यों पर है क्योंकि परिस्थितिकीय तन्त्र को बचाएं रखना जरूरी है। यह मनुष्य के उपभोग की दृष्टि से तथा पर्यावरण के अंतस्थ मूल्य दोनों दृष्टियों से वांछनीय है।

पर्यावरणीय नैतिकता के अन्तर्गत पर्यावरण के विभिन्न घटकों से सम्बंधित मनुष्य के कर्तव्यों एवं उचित अनुचित का निर्णय करने वाले मापदण्डों का अध्ययन किया जाता है इस दृष्टि से पर्यावरण नैतिकता के निम्न तीन पक्ष हैः–

(1) पशु जगत से संबंधित नैतिकता
(2) वनस्पति जगत नैतिकता
(3) भौतिक जगत से संबंधित नैतिकता

5.3.1 पशुजगत से संबंधित नैतिकता

जीव जन्तु हमारे पर्यावरण के आवश्यक अंग है। मनुष्य उनका उपभोग अपने जीवन की आवश्यकता पूर्ति के लिए, अधिक सुविधाजनक बनाने एवं मनोरंजन हेतु करता है। इस प्रकार पशु–पक्षी एवं मनुष्य पर्यावरण में अन्तःसंबंध में रहते हैं, परन्तु पशु मनुष्य के साथ कैसा व्यवहार करता है?यह नीतिशास्त्र का विषय नहीं है, बल्कि मनुष्य को पशुओं के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए यह पशुजगत परक नैतिकता का मूल विषय है।

मनुष्य केन्द्रित मूल्यों की आवधारणा ने पशु–पक्षियों को मनुष्य का साधन मात्रा माना है इसलिए धार्मिक ग्रन्थों में भी पशुओं के प्रति हिंसा को निन्दनीय नहीं माना गया है। विज्ञान में भी इसी को आधार बनाते हुए मनुष्य के हित में पशु शरीर विच्छेदन किया जाता है। अधिक दूध के उत्पादन के लिए दुधारू पशुओं को रसायन युक्त इन्जेक्शन लगाए जाते हैं जो उनके तथा उनके दूध की गुणवत्ता के लिए नुकसानदायक है। मनुष्य के भोजन की जरूरतों के लिए भी पशुओं की हत्या की जाती है। इसी प्रकार मनुष्य कृत्रिम इच्छाओं जैसे–हाथी दाँत प्राप्त करना, पशुओं के बाल व खाल का सजावट में उपयोग करना, अपने लिए उपयोगी वस्तुओं के निर्माण के लिए भी पशुओं की हत्या करता है।

मनुष्य का उपर्युक्त व्यवहार यह मानता है कि मनुष्य अन्य जीवों से ऊँचा स्थान रखता है अतः मनुष्य की इच्छाओं की पूर्तिमात्र ही पशुजीवन का उद्देश्य है। पशुओं का उपभोग मनुष्य का अधिकार है। ऊपर बताये गये तर्को का यदि हम नैतिक दृष्टिकोण से मूल्यांकन करे तो पाते है कि मनुष्य को सुख प्रदान करना मात्र किसी कर्म को शुभ नहीं बनाता। उस कर्म के मूल में विवेकपूर्ण तर्क का स्थान है जिसकी परीक्षा करके ही उस कर्म को उचित कहा जा सकता है। इस आधार पर निम्न प्रश्न उठते हैं–

(1) क्या पशुओं में इच्छा या संवेदनशीलता नहीं होती?जितने भी सचेतन प्राणी है उनमें सुख प्राप्त करने की एवं पीड़ा से दूर होने की प्रवृत्ति होती है क्या उनकी इस इच्छा को पूरा करना मनुष्य का दायित्व नहीं है?
(2) अपनी कृत्रिम इच्छाओ के लिए किसी के जीवन को नष्ट करना अनुचित नहीं है?
(3) क्या मनुष्य अन्य जीवों के जीवन के होने में आनन्द व सौन्दर्य का अनुभव नहीं करता?
(4) पशु–पक्षी हमारी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। वे खाद्य श्रृंखला के आवश्यक भाग हैं। उनकी संख्या में कमी पूरे परिस्थितिकीय तन्त्र को असंतुलित कर देगी। क्या इस सन्तुलन को बनाए रखना मनुष्य की जिम्मेदारी नहीं है?

उपर्युक्त प्रश्नों के प्रकाश में पर्यावरणविदों का मानना है कि पशु जगत का संरक्षण मनुष्य का

नैतिक कर्तव्य है। यह सही है कि मनुष्य मूल्यसोपान में सबसे ऊपर है, परन्तु जब तक मनुष्य जीवन पर संकट न आये, तब तक पशु–पक्षी या किसी भी जीव की हत्या नैतिक दृष्टि से अनुचित कही जाएगी।

वनस्पति जगत से संबंधित नैतिकताः– जीव जन्तुओं की भाँति, पेड़–पौधे भी हमारे पर्यावरण के आवश्यक भाग हैं, वे प्रकृति से अपना भोजन प्राप्त करते हैं और मनुष्य के लिए भोजन तैयार करते हैं। इस भोजन निर्माण की प्रक्रिया के साथ–साथ वनस्पति जगत वायुमण्डल में निश्चित तापमान एवं ऑक्सीजन के स्तर को बनाए रखते हैं, जो जीवधारियों के रहने एवं सांस लेने के लिए आवश्यक है। इस प्रकार वनस्पतियों की संरक्षा उनकी उपयोगिता की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण है ही, साथ ही जीवन के प्रति सम्मान की धारणा से भी जुड़ी है।

पशुजगत की तुलना में वनस्पति जगत को संवेदनशील नहीं माना जाता, यद्यपि हम जानते हैं पेड पौधों में भी सूर्य की किरणों के प्रति संवेदनशीलता देखी जाती है। उनमें इच्छा तत्व यद्यपि कम देखा जाता है परन्तु वे सजीव है। इस दृष्टि से उन्हें बिना उचित आधार के काटना जीवनके प्रति असम्मान को प्रकट करता है।

हमने देखा कि मनुष्य के प्रकृति के साथ बदलते संबंधों ने वनो को अंधाधुंध ढंग से नष्ट किया है जिसके परिणामस्वरूप पशुओं से उसका आवास (Habitat) छिनता जा रहा है, साथ ही साथ प्रदूषण का खतरा बढ़ गया है। वनस्पति जगत पर्यावरण के घटको में सन्तुलन बनाए रखने में सहायक है, इसलिए मनुष्य ही नहीं अन्य जीवों और पर्यावरण को बचाने के लिए वनस्पति आवश्यक है। पेड़–पौधे पृथ्वी के तापमान को बनाए रखने, हवा को शुद्ध करने का महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं, इस दृष्टि से उनका अस्तित्व अपने आप में शुभ है। मनुष्य हरियाली, फूल, फल को देखकर जिस आनन्द का अनुभव करता है, उसका कारण वनस्पति जगत का अन्तस्थ मूल्य है।

उपर्युक्त विवरण स्पष्ट करता है कि वनस्पति जगत का संरक्षण मनुष्य एवं सम्पूर्ण पृथ्वी के लिए कितना आवश्यक है। हमें वनस्पति का उपभोग भी विवेकपूर्ण ढंग से आवश्यकतानुसार करना चाहिए। वनो को बचाकर, अधिकाधिक वृक्ष लगाकर हम पर्यावरण के प्रति अपने दायित्व को पूरा कर सकते है।

भौतिक पर्यावरण से संबंधित नैतिकताः– भौतिक जगत जड होता है उसके तत्वो में हम इच्छा, जीवन का सम्मान, संवेदनशीलता के गुणों की बात नहीं कर सकते परन्तु इनके प्रति भी मनुष्य के शुभ आचरण की बात करना सार्थक है।

हम जानते हैं कि पर्यावरण जैविक व अजैविक घटकों का संतुलन है। भौतिक जगत हमारे अस्तित्व की आवश्यकताओं को पूरा करता है इसलिए इसके विभिन्न घटको को स्वस्थ रखना एवं विकृति न होने देना मनुष्य का नैतिक उत्तरदायित्व है। इस प्रकार भौतिक जगत का हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उपयोग मूल्य है। हमारा शरीर, हमारा आवास व पर्यावरणीय घटक जिसमें हम सुरक्षा प्राप्त करते है विकास एवं मनोरंजन के साधन प्राप्त करते हैं। यह हमारे लिए साधन रूप में मूल्यवान है परन्तु इन साधनों पर हमारे साथ सभी जीव धारियों का भी अधिकार है। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य कोई प्राणी प्राकृतिक जगत में विकृति पैदा नहीं करता इसलिए भौतिक पर्यावरण को विकृत न होने देना मनुष्य का नैतिक दायित्व है।

मनुष्य के द्वारा इस नैतिक दायित्व को नहीं निभा सकने के कारण मिट्टी, जल व वायु में अवांछनीय तत्वों की उपस्थिति बढ़ी जा रही है, जो क्रमशः मृदा प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण व ध्वनि प्रदूषण का प्रमुख कारण है।

इस उपयोगितावादी मूल्य से भिन्न अजैविक घटकों का इस ब्रह्माण्ड में महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैविक घटकों की अजैविक घटको से अन्तर्क्रिया व अर्न्तसंबंध होते हैं। अजैविक घटकों के स्वरूप में विकृति आने से पारिस्थितिकीय तन्त्र असंतुलित हो जाता है। इस प्रकार स्वस्थ प्राकृतिक जगत का अंतस्थ मूल्य है जिसका मनुष्य को सम्मान करना चाहिए।

हमारे वेदों में भी प्राकृतिक जगत के प्रति सम्मान को इस प्रकार प्रकट किया है–

'यत्ते भूमि विखनामि, क्षिप्रं तदपित रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि, मा ते हृदयमर्पिपम्।।' अथर्ववेद–12.1.35

अर्थात् हे भूमि, तेरा जो भी भाग मैं खोदूं, वह शीघ्र ही उन्नत या अंकुरित हो जाए। न मैं तुम्हारे मर्मस्थल को आहत करूं, न ही कभी तुम्हारे हृदय को पीडित करूं।

प्रकृति के प्रति इस प्रकार के उदार भावों ने मनुष्य को प्रकृति–प्रेमी तथा कला व साहित्य प्रेमी बनाया जो उसके सांस्कृतिक विकास का सूचक है, जिसमें निरन्तरता उसे आध्यात्मिक विकास की ओर अग्रसर करती है।

उक्त नैतिकताओं का उद्देश्य यह नहीं है कि मनुष्य विकास की प्रक्रिया को बन्द ही कर दे इसका प्रयोजन सम्पोषणीय विकास (Sustainable Development) को स्वीकार करना है।

संपोषणीय विकास– पर्यावरण के हित में मनुष्य द्वारा किया जाने वाला टिकाऊ विकास है जिसमें वर्तमान विकास हेतु आवश्यक संसाधन प्राप्त करने के साथ भविष्य हेतु संसाधनों के संरक्षण पर दृष्टि रखी जाती है और मनुष्य एवं प्रकृति के मध्य ऐसा संतुलन प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है जो प्रकृति के प्रति संरक्षणवादी हो।

सम्पोषणीय विकास को संयम एवं त्याग की भारतीय परम्परा में इस प्रकार से स्वीकारा गया है–

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा, मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।। (ईशावास्पोपनिषद्)

अर्थात् इस गतिशील जगत में जो कुछ है, वह ईश्वर या ईशावासमय है। अतः 'त्यागपूर्वक भोग करो, लालच मत करो, यह धन किसका है?

बहुविकल्पात्मक

(1) पर्यावरण नैतिकता है
(अ) पर्यावरण का वर्णन (ब) नीतिशास्त्र का प्रयोगात्मक क्षेत्र
(स) नीतिशास्त्र का सैद्धान्तिक क्षेत्र (द) पवित्रता

(2) भौतिक पर्यावरण का प्रकार नहीं है
(अ) जैवमण्डल (ब) स्थलमण्डल (स) जलमण्डल (द) वायुमण्डल

(3) जैविक एवं अजैविक घटकों के अन्तःसम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है
(अ) नीतिशास्त्र में (ब) पर्यावरण में (स) परिस्थिति की में (द) दर्शनशास्त्र में

(4) वायु में अवांछनीय तत्वों की उपस्थिति कहलाती है
(अ) जल प्रदूषण (ब) जैव प्रदूषण (स) मृदा प्रदूषण (द) वायु प्रदूषण

(5) पशु हत्या करना अनुचित है क्योंकि
(अ) पशु भी संवदेनशील है (ब) धार्मिक पुस्तके ऐसा कहती है
(स) वे बदला लेंगे (द) पाप लगता है

(6) वनस्पति में होती है
(अ) इच्छाएँ (ब) वुद्धि (स) अचेतनता (द) संवेदनशीलता

(7) पर्यावरण के प्रति नैतिककर्त्ता कौन सा हो सकता है
(अ) पशु (ब) मिट्टी (स) वनस्पति (द) मनुष्य

(8) भारतीय परम्परा समर्थन करती है
(अ) भोग का (ब) औद्योगिकरण का
(स) मनुष्य की सर्वोच्चता का (द) त्यागपूर्वक भोग का

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

(1) पर्यावरण का क्या अर्थ है?
(2) पर्यावरण के दो घटक कौनसे हैं?
(3) भौतिक पर्यावरण के तीन प्रकार बताइये?
(4) जैविक पर्यावरण के दो भाग कौनसे है?मनुष्य किस भाग से संबंधित है?
(5) प्राकृतिक मानव कौन था?
(6) प्रदूषण किसे कहते हैं?

(7) ग्लोबल वार्मिंग क्या है?
(8) अंतस्थ मूल्य क्या है?
(9) पर्यावरण नैतिकता किसे कहते है?
(10) खाद्य श्रृंखला क्या है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

(1) पर्यावरण की परिभाषा दीजिये?
(2) पारिस्थितिकी की परिभाषा दीजिये?
(3) भौतिक पर्यावरण एवं सांस्कृतिक पर्यावरण में अन्तर समझाइये?
(4) भौतिक पर्यावरण को स्पष्ट कीजिए?
(5) जैविक पर्यावरण को स्पष्ट कीजिए?
(6) सांस्कृतिक पर्यावरण किसे कहते है?समझाइये?
(7) नियतत्त्ववाद की विचारधारा को समझाइये?
(8) संभववाद की विचारधारा को समझाइये?
(9) नवनियतत्त्ववाद को समझाइये?
(10) मानव केन्द्रित मूल्यों को समझाइये?
(11) उपयोगितावादी मूल्य को समझाइये?
(12) संपोषणीय विकास की अवधारणा को समझाइये?

निबन्धात्मक प्रश्न

(1) पर्यावरण की परिभाषा व स्वरूप को समझाइये?
(2) मनुष्य व प्रकृति में सम्बन्ध को समझाइये?
(3) प्रमुख पर्यावरणीय समस्याओं का वर्णन कीजिए?
(4) पशुजगत के सम्बन्ध में मनुष्य के नैतिक दायित्व को समझाइये?
(5) वनस्पति विषयक आचार संहिता को समझाइये?
(6) भौतिक जगत के संबंध में मनुष्य की नैतिकता को समझाइये?